॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

ऐतरेयोपनिषद

विषय सूची

॥अथ ऐतरेयोपनिषद॥ 3
प्रथम अध्याय – प्रथम खण्ड 4
प्रथम अध्याय –द्वितीय खण्ड 7
प्रथम अध्याय –तृतीय खण्ड 10
द्वितीय अध्याय 16
तृतीय अध्याय 19
शान्ति पाठ 22

॥ श्री हरि ॥

॥अथ ऐतरेयोपनिषद॥

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि॥
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु
तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूंगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ श्री हरि ॥

॥ऐतरेयोपनिषद॥

अथ प्रथमाध्याये – प्रथमं खण्डः

प्रथम अध्याय – प्रथम खण्ड

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् ।
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥१॥

सृष्टि की रचना से पहले यह एक ही आत्मा परमेश्वर था। वह भगवान ही ज्ञान से ज्वलन्त रूप में विराजमान था। अन्य कुछ भी नहीं था। भगवान् से अतिरिक्त सकल कारण जगत् अकम्प, अज्ञात और अव्यक्त था। उस आत्मा ने इच्छा की कि कर्मफल भोग के स्थानों की रचना करूँ। ॥१॥

स इमाँ ल्लोकानसृजत।
अम्भो मरीचीर्मापोऽदोऽम्भः परेण दिवं
द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः ॥
पृथिवी मरो या अधस्तात्त आपः ॥२॥

उस सर्वशक्तिमान् भगवान ने इन आगे वर्णित लोकों को रचा । अम्भम् , मरीची, मर और आपस्-जल-उसने रचे। वह अम्भस्-वाष्प-

है, जो ऊपर आकाश में है। उसकी स्थिति, आश्रय द्युलोक है । मरीची अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्ष से किरणें आती हैं। इस कारण उसका नाम भी मरीची कहा गया। मर-मरने वाली प्रथिवी है। जो नीचे भूमि पर हैं वे जल हैं। वाष्पमय का नाम अम्भ: है और स्थूल जल का नाम आपः, पृथिवी को मरने वाली इस कारण कहा गया कि यह मर्त्यलोक है। जन्म मरण इसी पर होता है। लोकरचना में चार प्रकार के लोक वर्णन हुए हैं-वाष्प मयलोक, प्रकाशरूप, अन्तरिक्षलोक, पार्थिवलोक और जल मयलोक। ॥२॥

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति ।
सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ॥३॥

लोकों को रचकर परमेश्वर ने इच्छा कि यह लोक हैं। अब मैं लोकपालों लोकरक्षकों को रचूँ। तब उसने जलों से-सूक्ष्म तत्वों से ही पुरुष को निकाल कर मूर्छित किया; विराट पुरुष को बनाया। विराट् की रचना पुरुषाकार होने से उसे पुरुष कहा है। ॥३॥

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डं
मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतं नासिकाभ्यां प्राणः॥
प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतमक्षीभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ
निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि
लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा
नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत
शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥४॥

भगवान् ने उस विराट् को तपाया । नियम नियति में बाँधा। उस ज्ञान से विचारित विराट् का मुख निर्भेदन हुआ उस विराट् में मनुष्यादि देह बन गये और उन में मुख खुल गया; जैसे अण्डा भेदन होता है । मुख से वाणी हुई और वाणी से उसका देवता अग्नि प्रकट हुआ। दोनों नासिकाएँ खुलीं, दोनों नासिकाओं से प्राण भीतर प्रविष्ट हुआ और प्राण से उसके देवता वायु की सिद्धि हुई। दोनों आँखें खुलीं, आँखों से चक्षु - देखने की शक्ति प्रकट हुई और चक्षु से सूर्य देवता प्रकट हुए। दोनों कान खुले; कानों से सुनने की शक्ति प्रकट हुई और श्रोत्र से उस का देवता दिशाएँ हुई । त्वचा से लोम हुए–स्पर्शशक्ति के केन्द्र -प्रकट हुए। फिर लोमों से अन्न और वनस्पतियाँ प्रकट हुई। लोम सदृश ये वस्तुएँ भूमि पर प्रकट हुईं। हृदय खुला; हृदय से मन प्रकट हुआ और मन से चन्द्रमा प्रकट हुआ। नाभि खुली, नाभि से अपान-अधोभाग प्रकट हुआ और अधोभाग के चक्र से मलत्याग हुआ। जनन-इन्द्रिय खुली, उससे उत्पादन-शक्ति प्रकट हुई और उत्पादन शक्ति से जल प्रकट हुए। ॥४॥

॥ इत्यैतरेयोपनिषदि प्रथमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥

॥प्रथम खण्ड समाप्तः॥

॥ श्री हरि ॥

॥ऐतरेयोपनिषद॥

अथ प्रथमाध्याये – द्वितीयं खण्डः

प्रथम अध्याय –द्वितीय खण्ड

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतन्।
तमशनापिपासाभ्यामन्ववार्जत्।
ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥
१॥

इस प्रकार रचित हुए वे देवता इस विराट महा समुद्र में गिरे। उस विराट काया को परमात्मा ने भूख और प्यास से संयुक्त कर दिया। तब उन देवताओं ने परमात्मा से प्रार्थना की और बोले- हमें हमारा आश्रय स्थान बताइए। जिसमें रहकर हम अन्न का भक्षण कर सकें। ॥१॥

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ।
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ २॥

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम्।
ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति ॥ ३॥

तब परमात्मा उबके लिए गाय लाये। देवता बोले – 'निश्चय ही यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं है'। ऐसा सुनकर परमात्मा उनके लिए घोड़ा लेकर आये। तब भी देवता बोले – ' यह भी निश्चय ही हमारे लिए पर्याप्त नहीं है'। उत्तम इन्द्रियों के लिए पशु शरीर उचित नहीं है। तब अन्त में परमेश्वर उनके लिए पुरुष लाये, उन्होंने देवताओं के लिए मानव देह का निर्धारण किया । तब देवता बोले-अहो, यह उत्तम है; पुण्यरूप है। पुरुष ही सुकृत रचना है। तब परमात्मा ने देवताओं को कहा—अपने अपने आश्रय स्थानों में प्रवेश करो। ॥२-३॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके
प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशाद्दिशः
श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा
त्वचंप्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो
भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥ ४॥

भगवान् का आदेश पाकर, वाक् इन्द्रिय के देवता अग्नि बनकर मुख में प्रविष्ट हो गए। वायु प्राण होकर नासिका में प्रविष्ट हो गए । सूर्य ने चक्षु होकर नेत्रों में प्रवेश किया। दिशाएं श्रोत्र होकर दोनों कानों में प्रविष्ट हुई। औशोधियों और वनस्पतियाँ ने रोम बनकर त्वचा में प्रवेश किया। चन्द्रमा मन होकर हृदय में प्रविष्ट हुए। मृत्यु अपान होकर नाभि में प्रविष्ट हुआ। जल ने वीर्य होकर लिंग में प्रवेश किया। ॥४॥

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति
ते अब्रवीदेतास्वेव
वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति ।
तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते
भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ॥ ५॥

तब परमात्मा ने भूख-प्यास ने कहा- हमारे लिये भी कोई आश्रय स्थान बताइये। तब परमात्मा ने उससे कहा – तुम दोनो को मैं इन्हीं देवताओं में ही स्थापित करता हूँ। तुम्हे भी इनका भाग प्राप्त होगा। यही कारण है की जिस किसी देवता के लिए हवि दी जाती है, उस देवता की हवि में क्षुधा- पिपासा दोनों भाग होते हैं। ॥५॥

॥ इत्यैतरेयोपनिषदि प्रथमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्तः ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ऐतरेयोपनिषद॥

अथ प्रथमाध्याये – तृतीयं खण्डः

प्रथम अध्याय –तृतीय खण्ड

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥ १॥

उन परमात्मा ने विचार किया कि ये लोक और लोकपाल हैं, जिनकी रचना मैंने की है। अब मुझे इनके लिए अन्न की रचना करनी चाहिए। ॥१॥

सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत ।
या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ॥ २॥

तब परमात्मा ने आपों – जल को तपा कर, पृथिवी की स्थूल अवस्था प्रदान की। उन जलों के तपने पर उनमें से जो मूर्ति उत्पन्न हुई - वह ही अन्न है। भोग के योग्य पदार्थ मूर्तिमान ही हैं। ॥२॥

तदेनत्सृष्टं पराङ्त्यजिघांसत्तद्वाचाऽजिघृक्षत्
तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम् ।
स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ३॥

परमात्मा द्वारा रचित वह अन्न देवों को देख कर दूर भाग गया। उस समय अन्न को देवदल (आदि पुरुष) ने वाणी से ग्रहण करना चाहा, परन्तु वह उसे वाणी से ग्रहण न कर सका। यदि वह इस अन्न को वाणी से ग्रहण कर लेता तो निश्चय ही केवल अन्न का नाम लेकर ही वह तृप्त हो जाता। ॥३॥

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुं स
यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ४॥

तब देवदल (आदि पुरुष) ने अन्न को प्राण से- साँस से ग्रहण करना चाहा। परन्तु वह अन्न को, प्राण से ग्रहण नहीं कर सका। यदि वह इसे प्राण से ग्रहण कर लेता तो निश्चय अन्न को केवल सूंघ कर ही तृप्त हो जाता। ॥४॥

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुं स
यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवानमत्रप्स्यत् ॥ ५॥

इसके पश्च्यात उस देवदल (आदि पुरुष) ने अन्न को चक्षु-आँख से ग्रहण करना चाहा, पर वह अन्न को आँख से ग्रहण नहीं कर सका। यदि वह इसे आँख से ग्रहण कर लेता तो निश्चय ही अन्न को केवल देख कर ही तृप्त हो जाता। ॥५॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुं स
यद्धैनच्छ्रोतेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ६॥

तब उस देवदल (आदि पुरुष) ने अन्न को श्रोत्र से ग्रहण करना चाहा। परन्तु वह उस अन्न को श्रोत्र से ग्रहण न कर सका। यदि वह अन्न को

श्रोत्र से ग्रहण कर लेता तो निश्चय ही अन्न का केवल शब्द सुनकर ही तृप्त हो जाता। ॥६॥

तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुं स
यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ७॥

तब उस देवदल (आदि पुरुष) ने अन्न को रोम- त्वचा से ग्रहण करना चाहा। परन्तु वह उस अन्न को त्वचा से ग्रहण न कर सका। यदि वह इस अन्न को त्वचा से ग्रहण कर लेता तो निश्चय ही अन्न को केवल छूकर ही तृप्त हो जाता। ॥७॥

तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं स
यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ८॥

इसके पश्च्यात उस देवदल (आदि पुरुष) ने अन्न को मन से ग्रहण करना चाहा । परन्तु वह उस अन्न को मन से ग्रहण न कर सका। यदि वह इस अन्न को मन से ग्रहण कर लेता तो निश्चय ही अन्न का केवल ध्यान करके ही तृप्त हो जाता। ॥८॥

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुं स
यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्वित्सृज्य हैवानमत्रप्स्यत् ॥ ९॥

तब उस देवदल (आदि पुरुष) ने अन्न को जननइन्द्रिय से ग्रहण करना चाहा । परन्तु वह उस अन्न को जननइन्द्रिय से ग्रहण न कर सका। यदि वह इस अन्न को जननइन्द्रिय से ग्रहण कर लेता तो निश्चय अन्न को केवल त्याग कर ही तृप्त हो जाता है। ॥९॥

तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् सैषोऽन्नस्य ग्रहो

यद्वायुरनायुर्वा एष यद्वायुः ॥ १०॥

तब उस देवदल (आदि पुरुष) ने अन्न को अपान से, मुखद्वार से ग्रास द्वारा भीतर ले जाने वाली वायु से ग्रहण करनाचाहा । तब उसने अन्न को पकड़ कर ग्रहण कर लिया। जो मुख में निगलने की पवन (क्रिया) है वही अन्न का ग्रह (ग्रहण करनेवाला) है। यह जो अन्न ग्रहण करने की वायु है वही अन्न की वायु – अपान वायु है। अन्न ग्रहण करने की शक्ति के साथ ही आयु रहती है। ॥१०॥

स ईक्षत कथं न्विदं मद्दते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति।
स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा
दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं
यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ॥ ११॥

उस समय परमात्मा ने विचारा यह देवदल (आदि पुरुष) मेरे बिना कैसे रहेगा। तब उन्होंने विचार किया की मैं मुख इत्यादि किस द्वार से मैं इसमें प्रविष्ट होऊँ और विचार किया की यदि इस आदि पुरुष ने वाणी से बोलने की क्रिया कर ली, यदि प्राण से सांस लेने की क्रिया की, यदि चक्षुओं से ही देखने की क्रिया की, यदि कानों से सुन लिया, यदि त्वचा से ही स्पर्श कर लिया, यदि मन से ही चिन्तन कर ली, यदि अन्न भक्षण की क्रिया अपान से कर ली और यदि जननेन्द्रिय द्वारा ही मल आदि त्याग की क्रिया कर ली तब फिर मेरा इस देह में क्या स्थान है ? भाव यह है कि परमात्मा ने विचार किया की मेरे बिना इस सब इन्द्रियों द्वारा कार्य संपन्न कर लेना असंभव है। ॥११॥

स एतमेव सीमानं विदर्यैतया द्वारा प्रापद्यत ।
सैषा विद्दतिर्नामिद्वास्तदेतन्नाऽन्दनम् ।

तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥ १२॥

वह, ऐसा विचार कर परमात्मा उस आदि पुरुष अर्थात मनुष्य शरीर की सीमा – ब्रह्मरन्ध्र (सिर के ऊपर के कपाल भाग) को चीर कर उस देह में प्रविष्ट हो गए। यह द्वार विद्दति (विदीर्ण किये हुए द्वार) के नाम से प्रसिद्ध है। यह विद्दति नाम का द्वार- ब्रह्मरन्ध्र ही आनंद प्रदान करने वाला अर्थात आनंद स्वरुप परमात्मा की अनुभूति प्राप्ति कराने वाला है। उस मस्तक में रहने वाले परमात्मा की तीन अवस्थाएं है; उनके रहने के तीन निवास स्थान हैं, तीन स्वप्न हैं। उनमें एक यह मस्तक है, दूसरा यह कण्ठ स्थान है और तीसरा यह हृदय है। इन तीनों स्थानों में परमात्मा का वास है। ॥१२॥

स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति।
स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत् ।
इदमदर्शनमिती ३ ॥१३॥

देवदल रुपी उस आदिपुरुष पञ्चमहाभूतों अर्थात भौतिक जगत की रचना को चारों ओर से देखा। सृष्टि के सौन्दर्य का अवलोकन किया और यहाँ दूसरा कौन है यह विचार किया। तब उसने परमात्मा - परब्रह्म को सभी ओर विस्तृत देखा। इस प्रकार विचार करने पर उस आदि पुरुष ने इस सम्पूर्ण जगत मे व्याप्त परब्रह्म रूप में प्रत्यक्ष दर्शन किया और बोला – अहो! बड़े ही सौभाग्य की बात है की मैंने परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है।॥१३॥

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम । तमिदन्द्रं सन्तमिंद्र इत्याचक्षते परोक्षेण ।

परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥१४॥

देवदल रुपी उस आदिपुरुष द्वारा परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करने के कारण ही परमात्मा का नाम इदन्द्र (इदम्+द्र अर्थात इसको मैंने देख लिया) है। उस इदंद्र नामक परमात्मा को ही परोक्ष भाव से इन्द्र कहा जाता है क्योंकि देवजन परोक्ष प्रिय ही होते हैं अर्थात देवतागण मानो छिपाकर ही कुछ कहना चाहते हैं। परोक्षभाव से कही हुई बातों को ही पसंद करने वाले होते हैं। ॥१४॥

॥ इत्यैतरेयोपनिषदि प्रथमाध्याये तृतीयः खण्डः॥

॥ प्रथम अध्याय का तृतीय खण्ड समाप्तः॥

॥ श्री हरि ॥

॥ऐतरेयोपनिषद॥

अथ द्वितीयध्याये

द्वितीय अध्याय

ॐ पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः।
तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवऽऽत्मानं बिभर्ति
तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥१॥

सर्वप्रथम यह संसारी जीव निश्चय ही पुरुष शरीर में वीर्यरूप से यह गर्भ बनता है। यह जो वीर्य है वह पुरुष के सम्पूर्ण अंगो से उत्पन्न हुआ तेज है। पुरुष पहले ही अपने ही स्वरुपभूत इस वीर्यमय तेज को अपने शरीर में धारण करता है। फिर जब वह यह वीर्य स्त्री में सिंचित करता है। तब इसको गर्भरूप में उत्पन्न करता है। वह इसका पहला जन्म है; वह गर्भ की पहली अवस्था है। ॥१॥

तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति। यथा स्वमङ्गं तथा।
तस्मादेनां न हिनस्ति ।
साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥२॥

वह वीर्य, जब स्त्री में सिचित होता है तब वह उसके अपने अंग के समान हो जाता है। इसी कारण वह स्त्री को दुःख नहीं देता। वह स्त्री

अपने शरीर में विद्यमान पति के आत्मा रूप इस गर्भ को, अपने अंगों की भांति पालन पोषण करती है। ॥२॥

सा भावयित्री भावयितव्या भवति। तं स्त्री गर्भ बिभर्ति।
सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति।
स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव
तद्भावयत्येषं लोकानां सन्तत्या ।
एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३॥

वह उस गर्भ का पालन पोषण करने वाली माता उसको पालन पोषण करने वाली होती है। उस गर्भ को प्रसव के पहले स्त्री धारण करती है और उसके जन्म उपरांत उसका पिता अपने कुमार को विभिन्न संस्कारों द्वारा अभ्युदयशील बनता है तथा उसकी उन्नति करता है। तथा जन्म से लेकर जब तक वह सर्वथा योग्य न बन जाए, तब तक हर प्रकार से उसका पालन पोषण करता है। वह मानो इन लोकों को अर्थात मनुष्यों की परम्परा को बढ़ाने के द्वारा अपनी ही रक्षा करता है क्योंकि इसी प्रकार ये सब लोक विस्तृत होते हैं। वह उसका दूसरा जन्म है। ॥३॥

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते ।
अथास्यायामितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति ।
स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥ ४॥

वह पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ पिता का ही आत्मा, पुत्र पुण्य कर्म से (पिता मे आचरणीय उत्तम कर्मों) के लिए पिता का प्रतिनिधि बनाया जाता है। इसके अनंतर पुत्र का द्वितीय आत्मारूप पिता अपने समस्त कर्तव्य पूरे करके कृतार्थ हो जाता है तथा आयु पूरी होने पर इस

जगत से अपना शरीर छोड़ कर चला जाता है। यहाँ से जाकर वह आत्मा पुन: कहीं और उत्पन्न होता है। यह इस आत्मा का तीसरा जन्म है। ॥४ ॥

तदुक्तमृषिणा गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि
विश्वा शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति।
गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥ ५॥

गर्भ में रहते हुए ही वामदेव ऋषि को यथार्थ ज्ञान हो गया था। इसलिए उन्होंने माता के उदर में है कहा – अहो ! मैंने गर्भ मे रहते हुए ही इन देवताओं (इन्द्रिय रुपी देवता) के बहुत से जन्मों को भली भांति जान लिया। इससे पहले मुझे सैकड़ों लोहे के समान शरीरों ने अवरुद्ध कर रखा था परन्तु अब मैं श्येन (बाज) पक्षी की भांति वेग से उन सबको तोड़ कर उनसे अलग हो गया हूँ। गर्भ में सोये हुए वामदेव ऋषि ने उक्त प्रकार से यह बात कही। ॥५॥

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके
सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥६॥

इस प्रकार जन्म जन्मान्तर के रहस्य को जानने वाले वह वंमदेव ऋषि इस मानव शरीर का नाश होने पर, उधर्वगति के द्वारा भगवान् के परम धाम मे पहुँच कर, समस्त मनोरथों को प्राप्त कर पाकर अमृत हो गए, अमृत हो गए। ॥६॥

॥ इत्यैतरोपनिषदि द्वितीयोध्यायः ॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्तः॥

॥ श्री हरि ॥

॥ऐतरेयोपनिषद॥

अथ तृतीयध्याये

तृतीय अध्याय

ॐ कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा।
येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा गंधानाजिघ्रति
येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥१॥

इस मन्त्रका तात्पर्य यह है कि उस उपास्य देव परमात्मा के तत्व को जानने की इच्छावाले कुछ मनुष्य आपस मे विचार करने लगे– जिसकी हम लोग उपासना करते है, वह यह परमात्मा कौन है? दूसरे शब्दों में जिसके सहयोग से मनुष्य नेत्रों के द्वारा देखता है, कानों के द्वारा सुनता है, नाक के द्वारा गन्ध सूंघता है, वाणी के द्वारा स्पष्ट बोलता है, और जीभ के द्वारा स्वादयुक्त और स्वादहीन वस्तु की अलग अलग पहचान कर लेता है, वह आत्मा पिछले दूसरे अध्यायों में वर्णित आत्माओं में से कौन है ? ॥१॥

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् ।
संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिमतिर्मनीषा जूतिः
स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामोवश इति ।
सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवंति ॥ २॥

जो यह हृदय है; वही मन भी है। सम्यक ज्ञान शक्ति, आज्ञा देने की शक्ति, विभिन्न रूप से जानने की शक्ति, धारण करने की शक्ति, देखने की शक्ति, धैर्य, बुद्धि, मनन शक्ति, वेग, स्मरण शक्ति, संकल्प शक्ति, मनोरथ शक्ति, प्राण-शक्ति, कामना शक्ति, कामनाओं की अभिलाषा, यह सभी शक्तियां, उस ज्ञान स्वरूप परमात्मा के ही नाम अर्थात उसकी सत्ता का बोध कराने वाले लक्षण हैं। इन सबको जानकार, इस सब के रचियता, संचालक और रक्षक की सर्वव्यापिनी सत्ता का ज्ञान होता है। ॥२॥

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च
पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो
ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव ।
बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि
च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि
चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि
च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं
प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ३॥

आत्मा का स्वरूप वर्णन करने के अनन्तर ऋषि परमात्मा का स्वरूप वर्णन करते हैं -

यही ब्रह्म हैं, यही इंद्र हैं, यही प्रजापति हैं। यही समस्त देवता तथा यही पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज – पञ्च महाभूत हैं। यही छोटे छोटे मिले हुए बीजरूप समस्त प्राणी और इनके अतिरिक्त अन्य सभी अंडे से उत्पन्न होने वाले, गर्भ से उत्पन्न होने वाले, पसीने से उत्पन्न होने वाले तथा भूमि से निकलने वाले तथा घोड़े, गाय, हाथी. मनुष्य जो कुछ भी यह जगत है तथा जो कुछ भी इस जगत मे पंखों

वाला, चलने फिरने वाला और स्थावर प्राणी समुदाय है ; वह सब प्रज्ञान स्वरुप परमात्मा में ही स्थित है। यह समस्त ब्रह्माण्ड प्रज्ञान स्वरुप परमात्मा से ही ज्ञान शक्तियुक्त है। वह प्रज्ञान स्वरुप परमात्मा ही इसकी स्थिति के आधार हैं। यह प्रज्ञान स्वरुप परमात्मा ही हमारे उपासक – ब्रह्म हैं। ॥३॥

स एतेन प्राज्ञेनाऽऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे
लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥ ४॥

जिसने इस प्रज्ञान स्वरुप परब्रह्म को जान लिया वह इस लोक से ऊपर उठ कर उस स्वर्गलोक- परमधाम मे इस प्रज्ञान स्वरुप ब्रह्म के साथ, सम्पूर्ण दिव्य भोगों को प्राप्त कर अमर हो गया, अमर हो गया। ॥४॥

॥ इत्यैतरोपनिषदि तृतीयोध्यायः ॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्तः ॥

शान्ति पाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि।
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीर।
अनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि।
सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु।
अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूंगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ ॐ इति ऋग्वेदीय ऐतरेयोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ ऋग्वेद वर्णित ऐतरेयोपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥